

सम्मान के पात्र हैं वृद्ध

वृद्धावस्था से परेशान एक व्यक्ति ने भगवान से कहा, हे भगवान, आपने मानव की आयु के चार पड़ाव बनाए ही क्यों? यदि आप बचपन और जवानी के बाद प्रौढ़ होते ही व्यक्ति को अपने पास बुला लेते तो कितना अच्छा होता! एक अन्य चिन्तक ने कहा है – इस संसार में जाके ना आए वो जवानी और आके ना जाए वो बुढ़ापा देखने को मिलता है। राजकुमार सिद्धार्थ बीमारी, वृद्धावस्था तथा मृत्यु को देखकर ही संसार से वैरागी हो गए।

आदिकाल

अपने चारों ओर के वृद्धों की शारीरिक-मानसिक हालत देख उपरोक्त कथन ठीक लगते हैं परन्तु सृष्टि के आदिकाल पर नज़र डालें तो सत्य कुछ और ही नज़र आता है। कहावत है कि भगवान ने मनुष्य को अपने जैसा बनाया था। परमात्मा ने आदिकाल में जब मानव का निर्माण किया तो उसे अजर बनाया। देवी-देवताओं को अजर-अमर कहा जाता है। किसी भी देवता के शरीर पर वृद्धावस्था के चिह्न जैसे कि सफेद बाल, झुर्रियाँ, अल्प दृष्टि-दोष, भग्न दन्त आदि देखने को नहीं मिलते। लगभग 150 वर्षों की औसत आयु

व्यतीत करने पर भी वे जवान ही रहते थे और स्वेच्छा से देह-त्याग कर देते थे। इसलिए देवयुग में मृत्यु, वस्त्र परिवर्तन की तरह सुखदायी थी। मृत्यु भी एक उत्सव थी। भारत के यादगार शास्त्रों में लिखा है कि देवताओं ने ब्रह्मचर्य के बल से मृत्यु को जीता। इन्द्रियजीत देवता जराजीत और अकाल-मृत्युजीत भी थे।

वैदिक काल और मध्यकाल

देवताओं की कलाएँ गिरते-गिरते जब आठ तक पहुँच गईं और वे मानव बन गए तब धीरे-धीरे दैवीयुग के बाद वैदिक युग आया। इस अवस्था में पाँच विकारों का धीमी गति से प्रवेश होना शुरू हुआ और मानव शरीर पर जरा का वार भी होने लगा परन्तु इतना होते भी समाज में बुजुर्गों का विशेष सम्मान था। उनके मान-सम्मान को बनाए रखने के लिए उसी समय पितृ अमावस्या, पितर-दान आदि पर्वों को जन्म दिया गया। वे अपने अनुभव, ज्ञान, समय के साथ परिष्कृत हुए संस्कारों तथा सूझ-बूझ के कारण विशेष सम्मान के पात्र थे। विभिन्न ज्ञान के क्षेत्रों में भी जो जितना वृद्ध होता था, उसे उतना ही अधिक ज्ञान का भण्डार माना जाता था। सभा-परिषदों में उन्हें ऊँचा

स्थान मिलता था। आर्थिक, सामाजिक समस्याओं के निराकरण में उनकी राय ली जाती थी। राजा का बड़ा पुत्र उत्तराधिकारी होता, गाँव का सबसे बुजुर्ग व्यक्ति मुखिया बनता और कबीले का स्वामी भी सबसे बुजुर्ग व्यक्ति बनता था। कहने में आता था, इसने ज़्यादा दुनिया देखी है। यह कहावत भी उसी समय की है कि बाल धूप में सफ़ेद नहीं किए। आधुनिक युग में इस कहावत का कोई औचित्य नहीं क्योंकि कई बच्चे तो सफ़ेद बाल लेकर ही जन्मते हैं। उस समय का वृद्ध केवल परिवार का ही नहीं, सारे समाज का अपना होता था। हर कोई उसके सुख-दुःख में भागीदारी करता था। वह पूरे समाज की अमानत समझा जाता था। पूरे समाज के लिए वह पूज्य और सम्माननीय होता था।

आधुनिक काल

वैदिक काल के बाद मध्यकाल तक आते-आते थोड़ा बदलाव आया परन्तु आधुनिक काल में तो सिक्के का पहलू ही पूरा बदल गया। आज के भौतिकवादी युग में अर्थ की प्रधानता होने के कारण मानव की कार्यकुशलता और उससे होने वाले लाभों पर ही ध्यान केन्द्रित हो

गया। पुराने वैद्य के स्थान पर उच्च शिक्षा प्राप्त युवा डॉक्टर के पास भीड़ बढ़ गई। उपयोगी और मुनाफा देने वाली प्रतिभाओं की खोज में, युवावर्ग वृद्धों की अपेक्षा बाजी मारने लगा। कंप्यूटर के ज्ञान में 18 वर्ष का युवा, 60 वर्ष के वृद्ध से ज्यादा उपयोगी लगने लगा। सैनिक भी युवा चाहिएं, खिलाड़ी भी युवा चाहिएं, और इस प्रकार अनुभव के बजाय शारीरिक आयु का महत्त्व बढ़ने के कारण 55-60 वर्ष के बाद सेवा-निवृत्ति की प्रथा बन गई। इस भौतिकवादी दृष्टिकोण ने लाभ की दृष्टि से बुजुर्गों को भार रूप बना दिया। ऐसा दृष्टिकोण असत्य भी है और निन्दनीय भी।

अनुपयोगी नहीं हैं वृद्ध

कुछ समय पूर्व एक समाचार पढ़ने को मिला था कि इंग्लैंड में एक सर्वे किया गया। बुजुर्गों से संबंधित इस सर्वे का परिणाम यह बताया गया कि यहाँ के बुजुर्ग साल में 40-50 बार अपने बच्चों के घर जाते हैं और वहाँ उनके बच्चों के साथ समय बिताते हैं जिससे डे-केयर सेंटर का खर्चा बचता है। इस खर्चे की कुल राशि 75 अरब तक आंकी गई। सच्ची बात है, नौकर या आया के सहारे घर या बच्चे छोड़ना अपेक्षाकृत कम सुरक्षित है। और वे नौकर जो स्वयं सुसंस्कारित नहीं, बच्चों को क्या सिखा पाएंगे। ऊपर से यदि उनमें

नशे आदि की गुप्त आदत हो तो संग और भी ज्यादा खतरनाक हो जाता है।

उम्र नहीं, उमंग बनाती है जीवन

जीवन को यात्रा कहा गया है। कोई भी व्यक्ति जब यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर पहुँचता है तो प्रसन्नता का अनुभव करता है परन्तु आज की परिस्थिति में यात्रा का अन्तिम पड़ाव यदि दुखदायी है तो उसके कारणों को समझना होगा। वास्तव में, हर प्रकार की यात्रा की तैयारी करनी पड़ती है, बिना तैयारी के यात्रा कठिन होती है। तैयारी भी बाल्यकाल से ही चाहिए। यह तैयारी मानसिक है। यदि मनोभूमि शक्तिशाली हो तो हर बात अनुकूल दिखाई देती है, मनोभूमि कमजोर हो तो हर बात प्रतिकूल नज़र आती है। जेम्स ए. गार्फील्ड ने कहा है – झुर्रियाँ हमारे माथे पर पड़नी ही हैं तो भी उन्हें हृदय पर मत पड़ने दो।

वास्तव में आत्मा न बूढ़ी होती है, न जवान। हमने रोज़ दर्पण में जिस आवरण को देखा वह तो घिसना ही था परन्तु इस आवरण को धारण करने वाली अर्थात् आत्मा तो आज भी वैसी ही है जैसी कि गर्भ-प्रवेश के समय थी। तो फिर बुढ़ापा कैसा? किस बात का? जो थकान, निराशा और खीझ अनुभव करता है वास्तव

में वह बूढ़ा है, भले ही वह आयु की दृष्टि से जवान ही क्यों न हो। जिसमें आशा, उत्साह, हिम्मत मौजूद है वही जवान है। शरीर की स्थिति नहीं, मन पर छाई निराशा दुखदायी है। महात्मा गाँधी, मदर टेरेसा, दादी प्रकाशमणि कभी बूढ़े नहीं दिखाई पड़े। जिसने अपनी आदतें, इच्छायें और गतिविधियाँ ऊँचे स्तर की रखी हैं उन्हें कभी ऐसा बुढ़ापा नहीं देखना पड़ता जो इज्जत में कमी पड़े। कम परिश्रम करने वाले कई वृद्धों के परामर्श से लाखों रुपयों का फायदा होते देखा गया है। सौजन्य और शालीनता की शिक्षा देने वाले वृद्धों के प्रति समाज सदा ही कृतज्ञ भाव रखता है। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने एक बार एक वृद्ध से व्यक्तिगत जीवन के विषय में पूछा। वह वृद्ध व्यक्ति बोला कि 'मैं अपना पारिवारिक उत्तरदायित्व अपने पुत्रों को देकर निश्चिंत हूँ। वे जो कहते हैं, कर देता हूँ, जो खिलाते हैं, खा लेता हूँ और अपने पौत्र-पौत्रियों के साथ हँसता-खेलता रहता हूँ। बच्चे कुछ भूल करते हैं तो भी चुप रहता हूँ। मैं उनके किसी कार्य में बाधक नहीं बनता। पर जब कभी वे परामर्श लेने आते हैं, तब मैं अपने जीवन के सारे अनुभवों को उनके सामने रखकर, जीवन में की हुई भूल से उत्पन्न दुष्परिणामों की ओर से उन्हें

सचेत कर देता हूँ। वे मेरी सलाह पर कितना चलते हैं, यह देखना और अपना मस्तिष्क खराब करना मेरा काम नहीं है। वे मेरे निर्देशों पर ही चलें, यह आग्रह मैं नहीं रखता। परामर्श देने के बाद भी यदि वे भूल करते हैं तो मैं चिन्तित नहीं होता। उस पर भी यदि वे पुनः मेरे पास आते हैं तो मेरा द्वार सदैव उनके लिए खुला रहता है। मैं पुनः उचित सलाह देकर उन्हें विदा करता हूँ।' ऐसी उदार दृष्टि हो तो किसी भी वृद्ध को सिर आँखों पर बिठाया जा सकता है।

क्रियाशीलता की दृष्टि से मानव जीवन का पूर्वार्द्ध स्वयं और परिवार के लिए है परन्तु उत्तरार्ध में अपने को ध्यान, साधना, परोपकार के लिए तैयार कर लेना आवश्यक है। बड़ी होती संतान को उसके कर्तव्यों से परिचित करवाते हुए स्वयं को दीन-दुखियों की सेवा, सहायता, ज्ञान, सद्विचार, सद्भावों में व्यस्त कर लेना चाहिए। भारत के एक चिन्तक ने लिखा है कि परमात्मा ने हम सबको हर रोज़ सोने के सिक्के की तरह खनकता हुआ एक दिन दिया है और दुनिया रूपी बाज़ार में इसे खर्च करके

इसके बदले अथाह प्राप्तियाँ करने का सुअवसर दिया है। कोई इस सिक्के से कूड़ा खरीदता है, कोई इसे इस तरह खर्च करता है कि बदले में भाग्य को लकीर लग जाती है और कोई इस तरह खर्च करता है कि भाग्य की लकीर चमक जाती है। अगला दिन, एक अन्य नए सिक्के के रूप में पुनः हाथ लगता है। इस प्रकार जीवन का एक-एक कीमती क्षण हमारे हाथों दुर्गति या श्रेष्ठ गति को पाता रहता है।

सृष्टि की वानप्रस्थ अवस्था

यूँ तो संसार में वृद्धावस्था को जीतने वाले रसायन की खोज जारी है परन्तु लोहे को सोना बनाने वाले पारस की तरह यह खोज भी निरर्थक ही है। हाँ, कलियुग के इस तमोप्रधान समय में, कालिमा को चीरने वाले ज्ञान-सूर्य भगवान शिव का अवतरण हो चुका है और उनके द्वारा सिखाए गए ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग के बल से मनुष्य आदिकाल की तरह से वृद्धावस्था पर विजय प्राप्त कर सकता है अर्थात् देवताओं की तरह से जराजीत बन सकता है। लेकिन, जराजीत की मंजिल

इंद्रियजीत के रास्ते से होकर गुजरती है। वर्तमान समय संपूर्ण सृष्टि ही वानप्रस्थ अवस्था में है इसलिए हर व्यक्ति बूढ़ा हो चुका है। सृष्टि के आदिकाल में आने वाली आत्माओं को तो यहाँ पार्ट बजाते पाँच हजार वर्ष हो चुके हैं। जैसे वृद्धावस्था के बाद पुराना शरीर छोड़कर, आत्मा बालक के रूप में नया जन्म प्राप्त करती है उसी प्रकार वानप्रस्थ अवस्था में पहुँची हुई इस सृष्टि का भी अतिशीघ्र महापरिवर्तन होने वाला है। परिवर्तन के बाद संपूर्ण सृष्टि और इसकी हर चीज़ अपने सतोप्रधान स्वरूप में होगी। परमात्मा का अवतरण भी एक वृद्ध तन में हुआ है लेकिन उस वृद्ध तन के द्वारा ही परमात्मा संपूर्ण सृष्टि का काया-कल्प करते हैं। अतः परमात्मा के साकार माध्यम पिताश्री प्रजापिता ब्रह्मा का अनुकरण करते हुए हम भी अपने जीवन की शेष आयु को ईश्वरीय सेवा में समर्पित करें और आने वाले 21 जन्मों के लिए सदाबहार दिव्य युवावस्था प्राप्त करें, यही हमारी शुभकामना है।

— ब्रह्माकुमार आत्म प्रकाश



योग में रहकर सहायता करना ही सहयोग है। परमात्मा का साथ (सह) अनुभव करते हुए किसी के कल्याण के लिये कोई कार्य करना ही सहानुभूति है। स्वयं आनन्द का अनुभव करते हुए दूसरे को भी अपने साथ मिलाकर ईश्वरीय आनन्द का अनुभव कराना ही सह अनुभूति है।

